RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 25 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 13 सितम्बर, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 25, 10-13 सितम्बर 2020 तदनुसार 29 भाद्रपद, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

भगवान् ने श्रेष्ठ रचना की है

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

उपह्वये सुदुघं धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्।।

-ऋ. १।१६४।२६

शब्दार्थ-मैं **एताम्** = इस **सुदुघाम्** = उत्तम दूध वाली या आसानी से दोही जाने वाली **धेनुम्** = दुधारू गौ को **उपह्वये** = अपने समीप में चाहता हूँ, **उत** = और **सुहस्तः** = उत्तम हाथ वाला=कुशल **गोधुग्** = गौ दोहने वाला **एनाम्** = इसको **दोहत्** = दोह सकता है। **अभीद्धः** = सब ओर प्रदीप्त, सब ओर प्रकाशमान, **घर्मः** = तेजोमय **सविता** = जगदुत्पादक भगवान् **नः** = हमारे लिए **श्रेष्ठम्** = उत्तम **सवम्** = जगत्, उपदेश **साविषत्** = उत्पन्न करता है।

व्याख्या-सचमुच भगवान् ने यह महान् जगत् अत्युत्तम बनाया है। सूर्य की ओर देखो, भूमि को देखो, कैसी सुन्दर है! कैसी युक्तियुक्त! आँख किस स्थान पर रखी है? ठीक नाक के ऊपर। यदि नाक के नीचे रहती, तो बड़ा कष्ट होता। नाक से मलस्राव होता रहता है, उस पर कभी-कभी मक्खी आदि प्राणी आ जाते हैं। आँख नीचे होती तो देख न पाती, फिर मुख और नाक के बीच में पर्याप्त व्यवधान हो जाता। मुख में जाने वाले पदार्थ के गन्ध-दुर्गन्ध का ज्ञान न हो पाता। दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खाने से शरीर में विकार हो जाता। विचार से सारांश यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक पदार्थ ठीक-ठीक उत्पन्न किया गया है और यथास्थान स्थापित किया गया है। भगवान् ने प्रकृति से यह जगत् बनाया है। प्रकृति को इस मन्त्र में 'धेनु' कहा गया है। भोगरूप दूध देने के लिए प्रकृति सचमुच धेनु है और है भी यह **सुदुघा** = आसानी से दोही जाने वाली।

जीव कहता है-**'उपह्वये सुदुघां धेनुमेताम्'** = मैं इस सुदुघा धेनु को पास चाहता हूँ। पास तो आ जाएगी, किन्तु कार्य कर लोगे इससे? इसे तो-**'सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्'** = कोई चतुर दोहने वाला ही दोह पाता है। गौ के स्तनों में दूध है, किन्तु उसे प्रत्येक नहीं दोह पाता। प्रकृति में भोग है, किन्तु प्रत्येक इससे भोग नहीं प्राप्त कर सकता। कोई **सुहस्त** = उत्तम हाथों वाला, जिसे अपने हाथों का प्रयोग करना आता है, वही दोह सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है-**सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं।** इसको यों पढ़ दो-**सकल पदारथ हैं इहि माहीं। हस्तहीन नर पावत नाहीं।** वेद ने ठीक कहा-**'समौ चिद्धस्तै न समं विविष्टः'** [ऋ० १०।११७।९]-दोनों हाथ बराबर हैं, किन्तु समानरूप से कार्य नहीं कर सकते। एक शरीर के दो हाथ जो समान भी हैं, एक तरह कार्य नहीं कर सकते तो भिन्न-भिन्न शरीरों के हाथ जिनकी शक्ति, योग्यता समान नहीं है, कैसे इस धेनु से एक समान दूध दोह सकते हैं? इसे तो कोई सुहस्त ही दोहेगा। भगवान् ने इस प्रकृति-धेनु से यह श्रेष्ठ जगत्-दूध दोहा है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति।
यस्तायन्मन्यते चरन्तसर्वं देवा इदं विदुः।।

-अथर्व. ४.१६.१

भावार्थ-हे सर्वत्र व्यापक वरुण श्रेष्ठ प्रभो! आप प्राणिमात्र के नियन्ता और उन सबके कर्मों को सब प्रकार से जानने वाले जिन से किसी का कोई काम भी छिपा नहीं है, दूरस्थ समीपस्थ चर-अचर स्थूल-सूक्ष्म इन सब ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ मात्र को जानने वाले सर्वत्र व्यापक महान् सब से श्रेष्ठ सबके उपासनीय भी आप ही हैं।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।

-अथर्व. ४.१६.२

भावार्थ-हे वरुण राजन्! जो खड़ा वा चलता वा ठगता वा छिप कर चलता वा दुःख से जीता है, उन सब को आप जानते हैं, जो दो पुरुष मिलकर, अच्छी वा बुरी गुप्त सलाह करते हैं, उन दोनों में तीसरे होकर आप वरुण राजा उस सब को जानते हैं।

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।।

-अथर्व. ४.१६.३

भावार्थ-हे अनन्त वरुण राजन्! यह सम्पूर्ण पृथिवी और जिस का अन्त नहीं ऐसा बड़ा यह द्युलोक तथा पूर्व पश्चिम के दोनों समुद्र, आप वरुण राजा के वश में वर्त्तमान हैं। हे प्रभो! आप ही वापी, कूपादि थोड़े जलों में भी वर्त्तमान हैं, ऐसे सर्वव्यापक आपको जान कर ही हम सुखी हो सकते हैं।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिवः स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्।।

-अथर्व. ४.१६.४

भावार्थ-हे वरुण श्रेष्ठ प्रभो! यदि कोई पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाए तो भी आपसे कभी छूट नहीं सकता। आपके गुप्तचर दूत अर्थात् आपकी दिव्य शक्तियाँ, द्युलोक और पृथ्वीलोक में सर्वत्र व्यापक हो रही हैं, उन शक्तियों द्वारा आप सबको जानते हैं, आपसे अज्ञात कुछ भी नहीं है।

कोरोना काल में ''स्वाध्याय'' का महत्त्व

ले.-डॉ. निर्मल कौशिक 163, आदर्श नगर ओल्ड कैंट रोड़, फरीदकोट

आज पूरे विश्व में कोरोना कोविड 19 एक संकट बन कर छाया हुआ है। यह भयानक महामारी अब भयावह रूप धारण कर चुकी है। सर्वत्र त्राहिमाम त्राहिमाम मची हुई है। छोटे बड़े सभी देशों की अर्थव्यवस्था डगमगा गई है। व्यापार लगभग ठप्प है। छोटे दुकानदार छोटे उद्योग तो लगभग समाप्त ही हो गए हैं। आम इन्सान घर में बैठ कर मानसिक रूप से शिथिल हो रहा है। विद्यार्थियों का भविष्य अन्धकारमय हो गया है। बीमारियों से ग्रसित रोगी, वृद्ध अपना ईलाज नहीं करवा पा रहे हैं। सारा दिन टी.वी. और मोबाईल चला चला कर दिमाग सुन्न हो रहा है। खबरें और कोरोना के आंकड़े अन्दर भय पैदा करते हैं। उधर स्वास्थ्य प्रबन्धों की व्यवस्था देखकर निराशा होती है। डरें नहीं, लड़े सुन-सुन कर हम करोड़ों को इस कोरोना ने अपनी चपेट में ले लिया है। दवा का अभी तक कोई नामों निशान नहीं। बीमारी भी ऐसी कि कितना भी बच बचाव करो पता तभी चलता है जब आपको कोरोना जकड़ लेता है। सब्जियाँ फल कुछ घण्टे रखकर धोकर खाओ, कल जो सब्जी फल खरीदे उन्हें आज इस्तेमाल करो। बाहर जाना तो वैसे ही मुसीबत है। पहले हिदायत के अनुसार मास्क, सिनेटाईजर का प्रबन्ध करके, बार-बार हाथ धोकर, दूरी बनाकर सामान लेकर घर आओ तो गेट को हाथ न लगाओ, जूते बाहर निकालो हाथ धोओ-फिर कपड़े उतारो, उन्हें पानी में सर्फ डाल कर धोओ-फिर स्नान करो-फिर घर के लोग आपको स्वीकार करेंगे। घर में भी बार-बार गर्म पानी पियो-गर्म पानी में नमक डालकर गरारे करो, काढ़ा पियो-कितना कुछ करें फिर भी डरें। कोरोना तो चलो कहाँ से भी आया हो कैसे भी आया हो लेकिन हमने अपने साथ भी बहुत बड़ा अपमान किया है। हमने अपनी जीवनशैली ही बदल डाली। कौआ चला हंस की चाल अपनी भी भूल गया। विदेशी संस्कृति को अपना कर हमने अपनी परम्पराओं संस्कारों रहन सहन खानपान को नष्ट कर आधुनिकता के नाम पर अपने शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ किया। प्रकृति के साथ अन्याय किया और पर्यावरण को दूषित किया। आज प्राकृतिक खाद की जगह रासायनिक खादों का प्रयोग करके हमने आर्थिक सम्मानता तो पा ली। मगर अनेक बीमारियों का शिकार हो गए। शरीर की अपनी आन्तरिक क्षमता-प्रतिरोधक क्षमता समाप्त कर ली। यही कारण है कि यह कोरोना जैसी बीमारी इतनी तीव्रता से बढ़ रही है। आज हम अपनी संस्कृति और परम्परा की ओर लौट रहे हैं। यज्ञों के द्वारा हम पर्यावरण शुद्ध करने लगे है। वेद मन्त्रों की महत्ता समझने लगे है योग द्वारा नीरोग होने का दावा करने लगे हैं। कोरोना काल में खाली समय का प्रयोग हम स्वाध्याय द्वारा करने लगे है। हम इस समय घर में वर्षों से पड़े धर्म ग्रन्थों का अध्ययन कर मन की अशान्ति को दूर करने का प्रयास करने लगे है। हमें कोरोना काल ने समय का सदुपयोग करना सिखा दिया है। हम अपने वेदों, 'उपनिषद' पुराणो, ब्राह्मण ग्रन्थों, गीता, रामायण श्रीराम चरितमानस, कथा-पूजन आदि का महत्त्व समझ आने लगा है। हमारे आचार्यों ने हमारे जीवन में बहुत पहले से ही स्वाध्याय का क्या महत्त्व है यह बता दिया था। गुरुकुलों में अपने शिष्यों को वह उपदेश देता था कि 'स्वाध्याय में कभी भी आलस मत करो' इसका अभिप्राय यह था कि जब भी आपको खाली समय मिले 'स्वाध्याय' करने में लग जाओ। 'स्वाध्याय' के दो अर्थ है-सन्धि विच्छेद करने पर स्व+अध्याय: अर्थात् स्वस्थ अध्ययनम् अर्थात् स्वयं का अध्ययन करना। इसे आत्म चिन्तन कहते है। जीवन में अपने द्वारा किए गए शुभाशुभ कार्यों का अध्ययन कर भविष्य में अशुभ कार्यों का त्यागकर शुभ कार्यों में प्रवृत्त होना। दूसरे अर्थ के अनुसार स्वाध्याय का अर्थ है सु+आ+अध्याय: सब प्रकार के उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करना अथवा मनन करना। जीवन में प्रतिदिन समय निकाल कर उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करके उनके उपदेशों-सन्देशों को जीवन में धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए। उत्तम ग्रन्थों से अभिप्राय वेदादि ग्रन्थों से है क्योंकि गुरुकुलों में आचार्य वेदों का अध्ययन किया और कराया करते थे। महर्षि दयानन्द जी ने भी स्वाध्याय पर बल दिया। उन्होंने अपने आर्य समाज के दस नियमों में उल्लेख किया है कि 'वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। तैतिरीय उपनिषद में मानव के लिए आदेश है कि ''स्वाध्यायान्मा प्रमद:।''

अगर मनुष्य 15-20 मिनट आधा घण्टा भी समय निकालकर किसी ग्रन्थ का अध्ययन करें तो उसे थोड़े दिनों के बाद इसका लाभ अनुभव होने लगेगा। स्वाध्याय से मन के विचारों की शुद्धि होती है और नकारात्मक प्रवृत्ति समाप्त होकर सकारात्मक प्रवृत्ति का संचार होता है। एकाग्रता बढ़ती है और ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ मन को शान्ति भी मिलती है। जिस मन की शान्ति के लिए मनुष्य दिन रात इधर उधर भटकता है। वही शान्ति स्वाध्याय से सहज ही प्राप्त हो जाती है। पतञ्जली योगशास्त्र के व्यास भाष्य में स्वाध्याय के महत्त्व को दर्शाते हुए कहा गया है।

स्वाध्यायाद् योगामासीत
योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोगसम्पत्या
परमात्मा प्रकाशते।।

(१।२८)

एकाग्रता से किया गया स्वाध्याय सदैव लाभकारी होता है। स्वाध्याय और एकाग्रता (योग) के साथ होने से आत्मा में ईश्वर का प्रकाश होता है। जो लोग संस्कृत भाषा न जानने के कारण वेदादि ग्रन्थों का अध्ययन नहीं कर सकते उन्हें भाषानुवाद अथवा टीकादि का अध्ययन करने का अभ्यास करना चाहिए। महर्षि दयानन्द विरचित अनेक भाषानुवाद ग्रन्थ आज कल उपलब्ध हैं। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस का भी अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। सत्यार्थ प्रकाश में भी स्वामी दयानन्द जी ने संस्कृत भाषा के साथ-साथ सरल हिन्दी का प्रयोग किया है। सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति का सन्दर्भ देकर स्वामी जी ने स्वाध्याय को पांच महायज्ञों में सम्मिलित करने का समर्थन किया है। तृतीय सम्मुल्लास में वे लिखते हैं। स्वाध्यार्येन व्रतैहोमे-स्वैविद्येनेज्यया: सुतै:। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु:।। अर्थात् (स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ते पढ़ाते (व्रत) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मो पासना ज्ञान विद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्टि यज्ञादि करने सुसन्तानोत्पत्ति (महायज्ञै:) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव, और अतिथियों के सेवन रूप पञ्चमहायज्ञ..... आदि यज्ञों के सेवन से ब्राह्मण शरीर बनता है। इन पञ्चमहायज्ञों में प्रथम ब्रह्मयज्ञ है। ब्रह्मयज्ञ के दो भाग हैं सन्ध्योपासना और स्वाध्याय अर्थात् वेदादि ग्रन्थों का नियमित अध्ययन। स्वामी जी के अनुसार सन्ध्योपासना पहले करनी चाहिए और बाद में शान्तचित्त और एकाग्रचित्त हो कर स्वाध्याय में लीन होना चाहिए। जैसा कि पहले कहा गया है कि स्वाध्याय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान का अर्थ है जानना अर्थात् ज्ञात करना। वेद शब्द विद् धातु से बना है जिसका अर्थात् भी जानना है अत: वेद ज्ञान का पर्याय है।

इसीलिए वेद को ज्ञान (विद्या) का भण्डार कहा गया है। वेदा: विद्यानाम् निधान खलु। विद्या को मोक्ष प्रदान करने वाली कहा गया है। सा विद्या या विमुक्तये। विद्या ही मनुष्य में सद्गुणों का संचार करती है। इससे विनम्रता, योग्यता धनार्जन, धर्म (धारण क्षमता) और सुखों की प्राप्ति होती है। कहा भी है।

विद्या ददाति विनयं विनयादयाति
पात्रताम् पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्
धर्मं तत: सुखम् विद्या जीवन में सुख
प्राप्ति का मूल कारण है यही कारण
है कि मानव जीवन में विद्या को
जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों में शामिल
किया गया था। दान-तप-ज्ञान, धर्म
आदि के समान भी विद्या को जीवन
में आवश्यकता के रूप में स्वीकार
किया गया था।

येषां न विद्या तपो न दान
ज्ञान न शील गुणों न धर्मा
ते मर्त्य लोके भुवि भार भूता

अर्थात् जिसके पास विद्या ज्ञान तप, धर्म और ज्ञान नहीं है वह मनुष्य इस पृथ्वी पर पशु के रूप में विचर रहा है। विद्या चाहे गुरु द्वारा प्रदान की गई हो अथवा स्वाध्याय से उसका फल तो ज्ञान ही है। गुरु के द्वारा पाठ पढ़ाए जाने के बाद भी चिन्तन हेतु स्वाध्याय अनिवार्य है।

रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में भगवान राम की दिनचर्या में वेदों के स्वाध्याय का चित्रण अत्यन्त सुदृढ़ शब्दों में किया है। वह प्रात: काल नित्य प्रति वेदाध्ययन किया करते थे।

प्रात: काल उठहि रघुनाथा

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

14 सितम्बर हिन्दी दिवस पर विशेष.....

मातृभाषा हिन्दी का सम्मान करें

मातृ सभ्यता, मातृभाषा और मातृभूमि के गौरव को प्रदर्शित करने वाला ऋग्वेद में एक प्रसिद्ध मन्त्र आया है-

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीः मयोभुवः।।
बर्हिः सीदन्तु अस्त्रिधः।।

इस मन्त्र में मातृसभ्यता, मातृभाषा और मातृभूमि इन तीनों को गौरव प्रदान करते हुए देवी कहकर सम्बोधित किया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि यदि राष्ट्र का उत्थान करना चाहते हो तो इन तीनों देवियों को घर-घर में प्रकाशित करो। इनके प्रकाश से ही राष्ट्र का प्रकाश है। इनकी उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति है। इनके विकास से ही राष्ट्र का विकास है। किसी भी राष्ट्र का आधार उसकी संस्कृति, सभ्यता, मातृभाषा और मातृभूमि के प्रति अपनत्व और प्रेम की भावना होती है। जब राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक इनके ऊपर गर्व करता है तब राष्ट्र का गौरव बढ़ता है। परन्तु हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हमारे देश में इन तीनों देवियों का अनादर है। हमारी लम्बी दासता का सबसे भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ कि हम मातृ संस्कृति, मातृभाषा और मातृभूमि के लिए जो आदर और श्रद्धा होनी चाहिए , उससे शून्य हो गए। यह सब विनाश अंग्रेजी शिक्षा के कारण हुआ। अंग्रेजों का शासन हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता, मातृभाषा रूपी उपवन के लिए आँधी के समान ही था जिसने हृदय और मस्तिष्क की भूमि में से श्रद्धा और आस्था की जड़ों को उखाड़ कर फैंक दिया।

प्रतिवर्ष हमारे देश में 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है क्योंकि 14 सितम्बर 1949 के दिन भारत की संविधान सभा ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था। स्वाधीनता के संघर्ष के समय हिन्दी के प्रचार को स्वराज्य प्राप्ति के समान ही महत्त्व दिया जाता रहा था और सभी स्वाधीन देश अपना राजकाज अपने देश की भाषा में करते हैं। स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी भाषा सशक्त थी, बेचारी नहीं। इसी के बल पर रावलपिंडी से लेकर ढ़ाका तक स्वतन्त्रता आन्दोलन चला। आजादी के इस महा आन्दोलन में हिन्दी भाषा ने ही देश को जोड़ने का काम किया। आज भी देश के अधिकांश भागों में हिन्दी भाषा बोली और समझी जाती है। इसलिए 14 सितम्बर को संविधान का निर्णय राष्ट्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। इस महत्त्व के कारण इस दिवस को देश भर में विभिन्न संस्थाएं हिन्दी दिवस के रूप में मनाती हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात उम्मीद थी कि हिन्दी भाषा को उसका उचित स्थान मिलेगा परन्तु कुछ विकृत मानसिकता के शिकार लोगों ने स्वतन्त्रता के पश्चात भी हिन्दी भाषा का विरोध किया। संविधान में तो राष्ट्रभाषा का दर्जा दे दिया गया परन्तु यह दर्जा वास्तविकता से कोसों दूर है। आज के नेता हिन्दी को छोड़कर अंग्रेजी में भाषण देना अपनी शान समझते हैं। हिन्दी बोलने वाले को अनपढ़ और गंवार समझा जाता है। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग हिन्दी बोलने में शर्म महसूस करते हैं। आज आवश्यकता हिन्दी दिवस को मनाने की नहीं, हिन्दी को अपनाने की आवश्यकता है। जब तक हिन्दी भाषा को व्यवहार में नहीं अपनाएंगे तब तक हिन्दी दिवस मनाने का कोई औचित्य नहीं रह जाता। वर्ष में एक बार हिन्दी दिवस मनाने से इसकी उन्नति नहीं हो सकती। हिन्दी दिवस को मनाना अनुचित बात नहीं किन्तु केवल इतना करना भी पर्याप्त नहीं। यह बात निर्विवाद सत्य है कि देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधने के लिए देश की एक राष्ट्र भाषा की आवश्यकता है। उस रूप में हिन्दी के महत्त्व को वर्षों पूर्व स्वीकार किया जा चुका है। प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस मनाते हुए इस बात का चिन्तन करें कि गतवर्ष में राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति के लिए कौन-कौन से कार्य किए। पिछले वर्ष हिन्दी को समृद्ध बनाने और हिन्दी को व्यवहार में लाने के लिए क्या प्रयास किए, उसमें कितनी सफलता मिली और अगले वर्ष के लिए किस दिशा में कितने प्रयास की आवश्यकता है। इन बातों पर विचार करने से और उस दिशा में कार्य करने से ही हिन्दी भाषा की तरक्की होगी।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की थी। महर्षि दयानन्द जन्मना गुजराती थे और उनकी सारी शिक्षा दीक्षा संस्कृत में हुई थी। आरम्भ में महर्षि संस्कृत में ही भाषण और लेखन कार्य किया करते थे। प्रचार के लिए जब कलकत्ता पधारे तो वहां भी संस्कृत में ही भाषण दिए जिसका अनुवाद दूसरे विद्वान् किया करते थे। बाबू केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से महर्षि दयानन्द ने यह अनुभव किया कि साधारण जनता तक अपने विचार पहुंचाने के लिए हिन्दी भाषा को अपनाना चाहिए। इसके पश्चात भारतीय जनता की एकता की दृष्टि से महर्षि ने हिन्दी भाषा को अपनाया और अपने सारे ग्रन्थ हिन्दी और संस्कृत में लिखे। महर्षि की इन भावनाओं और देश की एकता का ध्यान रखते हुए आर्य समाज ने हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार का भरपूर प्रयास किया। न केवल अपने मौखिक प्रचार, लेखन कार्य, पत्र-पत्रिकाओं और दूसरे साहित्य के माध्यम से हिन्दी को हर प्रकार से बढ़ावा दिया। इस प्रकार अपने पिछले इतिहास में आर्य समाज हिन्दी भाषा के प्रचारक, सहायक और संरक्षक के रूप में सामने आया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का मानना था कि राष्ट्रभाषा या राजभाषा वही भाषा बन सकती जिसमें निम्नलिखित गुण हों-

जिसे देश के अधिकांश निवासी समझते हों, वह सरल हो, वह क्षणिक या अस्थाई हितों को ध्यान में रखकर न चुनी गई हो, उसके द्वारा देश का परस्पर धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार सम्भव हो सके और सरकारी कर्मचारी उसे सरलता से सीख सके। गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि समस्त भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसमें उपर्युक्त सभी गुण विद्यमान हैं। हिन्दी दिवस के अवसर पर जहां विविध प्रकार के कार्यक्रम आयोजित हों, वहां शासकीय, शैक्षणिक, व्यापारिक क्षेत्रों में हिन्दी के अधिक प्रयोग के विषय में चर्चा अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। तभी उस दिन की सार्थकता है। इन चर्चाओं के आधार पर अगले वर्ष के लिए ठोस एवं क्रमबद्ध कार्यक्रम भी बनाएं जाने चाहिए। आज हम हिन्दी दिवस के अवसर पर कार्यकम आयोजित करते हैं, वक्ता हिन्दी के महत्त्व पर प्रकाश ड़ालते हैं परन्तु व्यवहार में परिणाम शून्य है। लोग अपने घरों के बाहर नेमप्लेट अंग्रेजी में लगाते हैं, विवाह आदि कार्यक्रमों के निमन्त्रण पत्र अंग्रेजी में छपवाते हैं, अंग्रेजी बोलने में गौरव अनुभव करते हैं। हिन्दी भाषा का प्रचार तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम अपने व्यवहार में हिन्दी को नहीं अपनाते। केवल साल में एक बार हिन्दी दिवस मना लेने से हिन्दी का प्रचार नहीं होगा। जिस स्वाधीनता संग्राम को भारतीय भाषाओं ने लड़ा, स्वाधीनता मिलते ही उन्हें दरकिनार कर दिया गया। स्वाधीनता के सारे दस्तावेज ही न केवल अंग्रेजी में हस्ताक्षरित किए गए, बल्कि आधी रात को देश के प्रथम प्रधानमन्त्री ने स्वाधीनता प्राप्ति का पहला भाषण ही अंग्रेजी में दिया। यही वह क्षण था, जहां से हिन्दी ही नहीं तमाम भारतीय भाषाओं की बिडम्बना शुरू हुई। स्वाधीनता के पश्चात हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो दे दिया गया परन्तु बोल-चाल, व्यवहार और काम-काज में उसे महत्त्व नहीं दिया गया।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने बड़े भारी मन से यह कहा था कि कोई देश विदेशी भाषा द्वारा न तो उन्नति कर सकता है, न ही राष्ट्रभावना की अभिव्यक्ति कर सकता है। इसलिए हम राष्ट्र की उन्नति और अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दी को अपनाएं। केवल हिन्दी दिवस मना लेने से हम कर्त्तव्य को पूर्ण नहीं कर सकते। जब से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है तभी से हम हिन्दी दिवस मनाते चले आ रहे हैं परन्तु क्या हिन्दी को वह सम्मान और स्थान प्राप्त है जो उसे राष्ट्रभाषा के रूप में मिलना चाहिए था। अगर हमें वास्तव में अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा हिन्दी से प्रेम है तो हमें उसके उत्थान के लिए रचनात्मक और ठोस कार्य करना होगा जिससे हम हिन्दी को उसका गौरव प्रदान कर सके।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''हम अन्दर बाहर से एक बनें''

ले.-रामफल सिंह आर्य C-18 आनन्द विहार उत्तम नगर नई दिल्ली-110059

वैदिक संस्कृति का आधार दो स्तम्भों पर है अर्थात् उपदेश और तदनुसार आचरण। उपदेश की सार्थकता उसके आचरण में आने से ही होती है। यदि उपदेश में बहुत बड़ी-बड़ी बातें आती हैं, उच्च आदर्शों के स्थापन हेतु कुछ कहा जाता है और वह व्यवहार में आते-आते शून्य हो जाता है तो फिर उसका कुछ भी लाभ नहीं होता है। इसके विपरीत यदि उपदेश थोड़ा भी हो और आचरण में पूर्णता हो तो उसका लाभ अवश्य ही प्राप्त होता है। उपदेश को भी सुनना आवश्यक है, यदि सुनेगा ही नहीं तो चलेगा कैसे? इसीलिये हमने इन दोनों को ही आधार माना है। बिना सुने या पढ़े कोई भी व्यक्ति न तो विद्वान बन सकता है और न ही आचारवान बन सकता है। महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा है-वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। यहां पर स्पष्ट ही आचरण और उपदेश का भाव है। पढ़ायेगा कौन? जो स्वयं पढ़ा हुआ है और सुनायेगा कौन जिसने स्वयं सुना हुआ है। किसलिये पढ़ा रहा है? किसलिये सुना रहा है? इसलिये कि जैसे मैंने अपना जीवन ऊपर उठाया है, वैसे ही मैं दूसरे का जीवन भी उन्नत करूं। विद्या प्राप्त करके जो आनन्द मैंने पाया है, उसे मैं अन्यों को भी प्रदान करूं। लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अन्यों को उपदेश करते समय वह बात हमारे आचरण में, व्यवहार में होनी चाहिये।

महाभाष्यकार ऋषि कहते हैं-चतुर्भि: प्रकारै विद्योपयुक्ता भवति आगम कालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचन कालेन, व्यवहार कालेनिति, अर्थात् विद्या चार प्रकार से उपयोगी होती है, पढ़ने, स्वाध्याय करने, प्रवचन करने तथा जीवन में उतारने से। मनुष्य जीवन में क्रमिक उन्नति का यही मार्ग है।

ईश्वरीय वाणी वेद में अनेक स्थानों पर व्यवहार शुद्धि का उपदेश दिया गया है। आज हमने जिस मन्त्र को अपने विचार का केन्द्र बनाया है वह अथर्ववेद के द्वितीय काण्ड के सूक्त ३० चतुर्थ मन्त्र है। अवलोकन कीजिये:-

यद्न्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्व रूपाणां मनो गृभायौ बधे'

अर्थात् (हे वर!) (यत्) जो कुछ (प्रीति भाव आदि) (अन्तरम्) भीतर तेरे हृदय में है, (तत्) वह (बाह्यम्) बाहर (कन्या को प्रकट) हो और (यत्) जो कुछ (प्रीतिभाव) (बाह्यम्) बाहर प्रकट किया जाये (तत्) वह (अन्तरम्) भीतर, कन्या के हृदय में स्थित हो (ओषधे) हे ताप नाशक (ओषधिरूप वर) (विश्व रूपाणाम्) सर्वसुन्दरी (कन्यानाम्) कन्याओं (कन्या) के (मन:) मन को (गृभाय) ग्रहण कर।

भावार्थ-वर हार्दिक प्रीति से कन्या के साथ व्यवहार करे और पत्नी भी पति से हार्दिक प्रीति रखे। इस प्रकार प्रसन्नता से गृह लक्ष्मी बढ़ेगी और नित्य प्रति आनन्द रहेगा। यहां कन्यानाम् यह बहुवचन एक के लिये आदरार्थ है और मन्त्र में जो वर को उपदेश है वही कन्या के लिये भी समझना चाहिये।

यद्यपि यहां पर यह उपदेश गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वाले युवा दम्पत्ति के लिये है तथापि इसकी उपयोगिता तो सर्वत्र एक जैसी है। इस सूक्त में केवल पांच मन्त्र ही हैं और इन सभी में गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने वालों को उपदेश किया गया है। इस सूक्त का देवता 'अश्विनौ' है। अश्विनी शब्द वेद में जहां भी आया है, जोड़े के लिये आया है। यहां भी पति और पत्नी का जोड़ा ही तो है। मन्त्र का भाव स्पष्ट है कि जो कुछ हमारे भीतर मन में हो वही हमारे बाहर के व्यवहार में हो और जो कुछ व्यवहार में हो, वही हमारे मन में हो।

यहां आपके मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठ सकता है कि गृहस्थ में प्रवेश करने के अवसर पर ही यह उपदेश क्यों दिया गया, अन्यत्र भी दिया जा सकता था। इसका उतर यह है कि ऐसे उपदेश तो वेद में बहुत सारे स्थलों पर हैं लेकिन गृहस्थ में आते समय इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। उसका कारण यह है कि अब तक तो युवक एवं युवति दोनों पृथक-पृथक थे, एक प्रकार से वे स्वतन्त्र जीवन जी रहे थे परन्तु अब दोनों संग संग रहने चले हैं तो यह संग टूटने न पाये और सुखपूर्वक, सरलतापूर्वक चलता रहे, इसलिये दोनों को सचेत किया गया। दूसरे अर्थों में जहां भी हमारा किसी से व्यवहार होने लगे उसी समय उपयुक्त उपदेश की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। उसी समय इसकी परीक्षा भी होती है। जब हमारा परस्पर का व्यवहार शुद्ध होगा तो ही हमारा मेल, हमारी संगति या मित्रता भी आगे चल पायेगी। जीवन का कोई भी क्षेत्र ले लीजिये यह नियम सर्वत्र लागू होता है। हम किसी धार्मिक या सामाजिक संस्था, संगठन में काम करते हैं, पड़ौस में रहने वाले लोगों से बर्तते हैं, व्यापार, व्यवसाय करते हैं, नौकरी करते हैं सभी स्थानों पर इसी पारदर्शिता की आवश्यकता है। विवाह सम्बन्ध निश्चित करते समय लोग प्राय: अपनी झूठी शान बढ़ाने के लिये बढ़ा-चढ़ा कर, कुछ बातें छुपा कर, एक दूसरे को ठग कर आगे चलते हैं। कुछ समय के पश्चात् में सारे भेद सामने आ जाते हैं और चमक कलह क्लेश का केन्द्र बन जाता है। फिर दोनों पक्ष एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगते हैं और सम्बन्धों में कड़वाहट भर जाती है। इससे अच्छा है कि पहले से ही अपनी सारी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिये। इससे भले ही वह सम्बन्ध न बन पाये लेकिन बहुत सारी कठिनाईयों से बचा जा सकेगा।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हम जैसा सोचते हैं, वैसा ही करने लग जाते हैं और जैसा करने लगते हैं वैसे ही हो जाते है। बृहदारण्यक उपनिषद के ऋषि कहते हैं: ''यथाकारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापी भवति, पुण्य पुण्येन कर्मणा भवति पाप: पापेन। अर्थो स्वल्पाहु:'कामभय एवायं पुरुष: इति। यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरूते, यत्कर्म कुरुते तदेव भवति। (बृहदारण्यक ४-४-५)

अर्थात् मनुष्य का जैसा कर्म तथा आचरण होता है, वह वैसा ही हो जाता है, भला करने वाला भला हो जाता है, पाप करने वाला पापी हो जाता है। पुण्य कर्म से पवित्र होता है, पाप कर्म से मलिन हो जाता है। कहते भी हैं-यह जीव काममय है, जैसी कामना वाला होता है, वैसी बुद्धि वाला हो जाता है, जैसी बुद्धि होती है, वैसे कर्म करता है, जैसे कर्म करता है, वैसा बन जाता है।

इस वर्णन से क्या सिद्ध हुआ? यही कि पाप की, मलिन एवं कुत्सित विचारों की वृतियां भी मन में न आने देनी चाहिये। पाप क्या है? इसकी बहुत ही सरल सी पहचान है, जो कार्य हमें दूसरों से छुपा कर चोरी-चोरी करने पड़ें, मन में भय हो, शंका हो, लज्जा हो, वे कार्य त्याज्य हैं, पाप हैं। इसके विपरीत जिनके करने में आनन्द, उत्साह और निर्भयता बने वे धर्म के, पुण्य के कार्य हैं। लेकिन आज इस भौतिकता की चकाचौंध में, आर्थिक प्रभुत्त्व सम्पन्न युग में प्रत्येक बात को लेकर आचरण बदल रहें हैं और उच्च आदर्शों की परिभाषायें भी सामान्य रूप से कुछ और ही बनती जा रही हैं। इसका एक प्रमुख कारण शुद्ध आर्ष ज्ञान से सामान्य जन की विमुखता ही है। उदाहरण के रूप में बड़े-बड़े नेताओं, अधिकारियों, धर्मगुरुओं प्रचारकों आदि को ले लीजिये। जब उनका कोई दोष या न्यूनता लोगों के सामने आता है तो एक वक्तव्य जो सरलता से दिया जाता है, वह यह है कि यह मेरा व्यक्तिगत जीवन का विषय है। मेरे सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक जीवन से इसका कुछ भी लेना देना नहीं होना चाहिये। यह वाक्य सुनने में जितना सरल और स्पष्ट लगता है, वास्तव में वैसा है नहीं। ठीक है, मान लिया कि यह व्यक्तिगत विषय है तो हमारी आपत्ति यह है कि आप दोहरा व्यक्तित्व रखते ही क्यों हैं? क्यों नहीं अन्दर बाहर से पवित्र एवं शुद्ध तथा पारदर्शी जीवन रखते? आश्चर्य तो तब होता है जब उसी व्यक्तिगत विषय के लिये कानूनी अधिकार भी चाहिये होता है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। समलैंगिकता विकृत मस्तिष्कों से उपजी हुई एक बीमारी है जिसने न केवल सामाजिक ढांचे को ही क्षति पहुंचाई है, अपितु दुराचार भी फैलाया है। प्रकृति के विरूद्ध आचरण होने से भी यह कार्य निन्दनीय ही है। अब इस व्यसन में फंसे हुए किसी व्यक्ति से पूछिये तो वह क्या उत्तर देगा? भाई यह मेरा व्यक्तिगत विषय है, आपको इससे क्या लेना देना है? जी हां! बिल्कुल ठीक कहा आपने। व्यक्तिगत मामला है तो फिर उसके लिये कानूनी अधिकार की मांग किसलिये हैं। क्या मुझे अपने व्यक्तिगत कार्य को करने के लिये न्यायालय की शरण लेने की आवश्यकता है? मैं प्रात: काल लगभग साढ़े तीन बजे सोकर उठ जाता हूं। तो क्या मुझे इसके लिये कानूनी सहायता या स्वीकृति की आवश्यकता है? बिल्कुल नहीं, यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। मैं तीन बजे उठूं या चार बजे। लेकिन जिस काम में मुझे कानूनी स्वीकृति की मुहर चाहिये, सिद्ध है कि वह किसी न किसी रूप में समाज को प्रभावित कर रही है तो उस स्थिति में वह व्यक्तिगत विषय नहीं रह जाता है। व्यक्तिगत जीवन में दुष्कर्म करने वाला व्यक्ति क्या कभी सामाजिक जीवन में न्याय कर सकेगा? यही व्यक्तिगत विचारधारा उसके जीवन और कर्मों का आधार बनती है जिसकी छाप उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के ऊपर दिखाई देती है। बस इसी ओर उपरोक्त वेद मन्त्र और उपनिषद भी संकेत कर रही है हमारा जीवन अन्दर व बाहर से एक जैसा हो।

वैदिक दर्शन में इस बात की आवश्यकता को बहुत गम्भीरता से समझा गया था और शिक्षा पद्धति में ऐसी व्यवस्था की गई थी जिसमें विद्यार्थी को केवल शाब्दिक ज्ञान नहीं अपितु व्यवहार की शुद्धि का भी अभ्यास करवा दिया जाता था। यहां तक कि शिक्षा की समाप्ति पर भी गुरु उसे सचेत करते हुए दीक्षान्त भाषण के रूप में सन्देश देता था। सत्यं वद, धर्मं चर अर्थात् तू सत्य का और धर्म का आचरण करना। यद्यपि ये वाक्य अत्यन्त छोटे हैं, तथापि इन्हें

(शेष पृष्ठ 7 पर)

हमारे शरीर के सब अंग सशक्त हों

ले.-डा. अशोक आर्य पाकेट १/६१ रामप्रस्थ ग्रीन से. ७ वैशाली

मानव शरीर तब तक ही उत्तम प्रकार से गति कर सकता है, जब तक उसके शरीर के सब अंग शक्तिशाली तथा स्वस्थ होते हैं। ज्यों ही शरीर के किसी भी अंग में शिथिलता आती है, त्यों ही शरीर के लिए सुचारू रूप से कार्य करना कठिन हो जाता है। यहाँ तक कि हम जूते पहन कर चलते हैं। इस अवस्था में हम बड़े बड़े पथरीले मार्गों को सरलता से पार कर जाते हैं किन्तु ज्यों ही हमारे एक जूते में एक छोटा सा कंकर आ जाता है तो हमारा वह पाँव स्वच्छ मार्ग पर भी ठीक से चल नहीं पाता और जिस पाँव के जूते में कंकर आया है, काम करने से और आगे बढ़ने से वह मना कर देता है, जबकि दूसरा पैर आगे बढ़ने के लिए पूरी प्रकार से स्वस्थ है, तो भी वह पहले पैर के सहयोग के बिना स्वयं को आगे ले जाने में असमर्थ अनुभव करता है। हमारा मस्तिष्क एक बार फिर दोनों पावों को आगे बढ़ने का आदेश देता है, तो पैर धीरे धीरे आगे बढ़ने तो लगते हैं किन्तु इस समय इन पावों का आगे बढ़ना पूरे शरीर के लिए अति कष्ट दायक होता है। तो भी हम कष्ट को समझ कर यदि जूते से कंकर नहीं निकालते और लंगडाते से हुए आगे बढ़ाते चले जाते हैं तो थोड़ा सा आगे बढ़ने पर हमारे पेट के नीचे, जहां से टांगें आरम्भ होती है अर्थात् कटी के स्थान पर एक कष्टदायक गाँठ पैदा हो जाती है। यह गाँठ कई दिन में समाप्त होती है और जब तक समाप्त नहीं होती तब तक हमारे लिए कष्ट का कारण होती है। इसलिए यह आवश्यक होता है कि हमारा शरीर सब प्रकार से, सब अंगों सहित स्वस्थ रहे। अग्निहोत्र की इस तृतीय क्रिया में अंग स्पर्श के माध्यम से इस बात को ही समझते हुए प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु! हमारे शरीर के सब अंगों को सदा स्वस्थ बनाए रखें। मन्त्र इस प्रकार हैं:

हमारा मुख स्वस्थ हो

ओ३म् वाङ् म आस्येस्तु।।१।।

इस मन्त्र को बोलकर हम अपनी बाएँ हथेली में लिए गए जल में अपने दायें हाथ की बीच की दो अंगुलियाँ लगाकर अपने मुंह को छूते हुए परमपिता परमात्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! साक्षात् रूप से इस शरीर का केंद्र मुख ही है। यदि मुख स्वस्थ है, इसे कोई कष्ट नहीं है तो यह शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए कार्यशील रहता है किन्तु यदि मुख या जिह्वा में एक छोटा सा छाला सा भी निकल आता है तो यह पूरे शरीर को रोगाणु बना देता है क्योंकि अब हम मुख से कुछ खा नहीं पाते और यदि किसी प्रकार खा भी लेते हैं तो खाते समय अत्यधिक पीड़ा होती है, दांत इस खाने को ठीक प्रकार से चबा नहीं पाते, मेधा इस अनचबाये खाने को पचाने में स्वयं को असहाय अनुभव करता है और इस खाने को पचाने के चक्र में स्वयं भी रुग्ण हो जाता है।

हम शरीर को गतिशील रखने के लिए जो कुछ भी ग्रहण करते जाते हैं, उन्हें अन्दर भेजने का साधन मुख ही होता है। शरीर के सब अंग प्रत्यंगों को स्वस्थ रखने के लिए जो पौष्टिक पदार्थों का हम सेवन करते हैं, उनको ग्रहण करने का साधन मुख ही होता है। इसलिए मुख का शुद्ध तथा स्वच्छ होना आवश्यक होता है। इस मन्त्र से हम हमारे मुख को स्वस्थ रखने की प्रार्थना करते हैं और स्वच्छ हम इसे अपने पुरुषार्थ से करते हैं।

हमारी नासिका स्वस्थ हो

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽसस्तु।।२।।

हमारी नासिकाएं श्वसन क्रिया का कार्य करती हैं। शरीर तब तक ही कार्यशील होता है, जब तक नासिका स्वस्थ है। इसलिए मुख के समान हमारी नासिका का भी वैसा ही स्थान है, जैसा हमारे शरीर के लिए मुख का होता है। मुख ठीक से कार्यशील है किन्तु नासिका में कभी कोई शल्य आ जाता है तो यह ठीक से कार्य नहीं कर पाती। अनेक बार ठण्डी से या चोट से भी नाक बंद हो जाती है या फिर इस से ठीक से श्वास लेना संभव नहीं हो पाता। इस अवस्था में हमारा मुख भी ठीक से काम नहीं करता। इस से निकलने वाले शब्द तक ही ठीक से समझ में नहीं आते। अनेक बार तो नासिका इतना कष्टदायी हो जाता है कि हम बिस्तर से उठने का साहस ही नहीं कर पाते। हमारा सब कार्य व्यवहार, हमारी सब दिनचर्या ठीक से चल सके इसके लिए हम इस मन्त्र के माध्यम से प्रभु से अपनी नासिकाओं के दोनों छिद्रों को जल वाली अँगुलियों से छूते हुए निवेदन करते हैं कि हे पिता! हमारी नासिकाओं को सदा स्वस्थ रखने हुए सशक्त बनाए रखना।

हमारी आँखें सदा स्वस्थ हों

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।।३।।

जिस प्रकार शरीर में मुख और नासिका का विशेष स्थान है, उसी प्रकार ही आँखें भी शरीर की गतिशीलता के लिए समान महत्व रखती हैं। जिस प्रकार शरीर के लिए कुछ खाना पीना आवश्यक होता है, जिस प्रकार श्वसन क्रिया आवश्यक होती है, उस प्रकार आँख के प्रयोग से हमें मार्ग के दर्शन होते हैं। हमें कोई भी कार्य करना होता है अथवा हमें कहीं भी जाना चाहते हैं तो इस के लिए आँखों की भी कार्यशीलता आवश्यक हो जाती है। यदि वायु में एक महीने से तिनका उड़ता हुआ हमारी आँख में आ जाता है तो हमारी आँख तब तक न तो कुछ देख सकती है और न ही हमारा शरीर कोई भी गतिविधि कर सकता है, जब तक आँख साफ़ नहीं हो जाती। इसलिए प्रभु हमारी आँख को भी मुख और नासिका के समान स्वस्थ बनाए रखें।

हमारे कानों में सुनने की शक्ति बनी रहे

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।।४।।

शरीर को शब्द शक्ति की भी उतनी ही आवश्यकता होती है। श्रोत्र शक्ति के बिना हम किसी से अपने विचारों का आदान प्रदान ही नहीं कर सकते। जब कभी हमारे कान में कोई बाधा आती है या इस में हल्का सा दर्द होने लगता है, तो हमारा यह कान हमें कुछ और करने ही नहीं देता। हम बिस्तर से उठने की शक्ति भी अपने में अनुभव नहीं करते। यह श्रोत्र शक्ति का ही परिणाम था कि पृथिवीराज चौहान गौरी की हिरासत में रहते हुए भी उसे मार सका। इसलिए इस मन्त्र में प्रार्थना है कि प्रभु हमारे कानों को, हमारी श्रोत्र शक्ति को भी सदा स्वस्थ बनाए रखे।

हमारे बाजुओं का बल सदा बना रहे

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु।।५।।

हमारे मुख में, हमारे नासिका में, हमारी आँखों में और हमारे कानों में सब शक्तियां पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, समान रूप से कार्यरत हैं किन्तु यदि हमारे हाथ का कोई भी खंड ढीला हो जाता है तो हम ठीक से कार्य नहीं कर पाते। मानो हमारे हाथ की कुहनी की हड्डी फिसल जावे तो मुख होते हुए भी हम कुछ खा नहीं सकते, आँख से देखते हुए भी हम कुछ कर नहीं पा रहे, नासिका में प्राण शक्ति सही से बनी हुई है फिर भी हाथ हमें कुछ करने नहीं दे रहे, कान भी सब कुछ ठीक से सुन तथा समझ रहे हैं तो भी हाथों की शक्ति में कमी होने के कारण हम अपने जीवन की कोई भी आवश्यकता स्वयं की अपनी शक्ति से पूर्ण नहीं कर पा रहे। इससे स्पष्ट होता है कि हमारे हाथों का भी स्वस्थ तथा सशक्त होना आवश्यक है और इस मन्त्र के द्वारा प्रभु से बाजुओं की शक्ति ही मांगी गई है।

हमारी जंघाएँ सदा सशक्त रहें

ओ३म् उर्वोम ओजोऽस्तु।।६।।

अंग स्पर्श का यह छठा बिंदु हमें प्रेरित करते हुए उपदेश कर रहा है कि हम इस प्रकार के कार्य करें कि इनकी शक्ति भी निरंतर बनी रहे। शरीर के सब अंग सशक्त है किन्तु जंघाए हमारा साथ नहीं दे रहीं तो हमारा शरीर गति में आ ही नहीं सकता। हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर अपने जीवन व्यापार का कोई भी कार्य नहीं कर सकते। इसके लिए हमें कोई मध्यस्थ बनाना पड़ता है। यदि मध्यस्थ सुशील, सत्यवादी है तो उत्तम अन्यथा यह भी हमारी हानि का ही कारण बनता है। इसलिये हम इस मन्त्र में प्रार्थना कर रहे हैं कि हमारे शरीर के अन्य अंगों के समान हमारी जंघाएँ भी पूर्ण स्वस्थ तथा सशक्त बनी रहें।

हमारे शरीर के सब अंग सशक्त हों

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा में सह सन्तु।।६।।

अंत हम जल को छूकर इसकी बूंदें सब दिशाओं में डालते हैं। इस का भाव है कि जब हमारे शरीर के अन्य सब अंग स्वस्थ करने के लिए प्रभु से विनती कर चुके तो अंत में पुन: हम विनीत भाव से प्रभु से इस बात को दोहराते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार हमारे शरीर के सब अंग स्वस्थ रहते हुए कार्य करते हैं, उस प्रकार ही सब प्रकार के रोगों से रहित होते हुए, सदा स्वस्थ रहते हुए शरीर जिस कार्य को भी करना चाहता है, वह कार्य इस शरीर के सब अंग मिलकर करें।

माना गया है कि इस शरीर को कार्य करने के लिए परमपिता परमात्मा ने सौ वर्ष की समयावधि दी है। मनुष्य यदि उत्तम करते हुए, स्वास्थ्य के सब नियमों का पालन करते हुए आजीवन कार्यशील रहता है तो उसकी आयु सौ वर्ष से अधिक भी हो सकती है। हमने बहुत से सौ वर्ष की आयु के लोगों को कार्यशील देखा है। अभी कुछ महीने पूर्व ही बंगलौर में आर्योपदेशक पंडित सुधाकर जी का देहांत हुआ है, वह १२४ वर्ष के थे। उनकी इस लम्बी तथा परमात्मा की दी हुई आयु से भी अधिक लम्बी आयु उनका पुरुषार्थ, सचरित्र तथा शुद्धाचरण ही था।

ऐसा भी होता है कि बहुत से लोग जीवन को स्वस्थ नहीं रख पाते। अनाप शनाप प्रकार के खाने खाते हैं। उनके शयन और जागरण का समय भी ठीक नहीं होता। उनका खान पान भी स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। आलसी, प्रमादी तथा कामी लोग भी इस श्रेणी में आते हैं। इस कारण वह ईश्वर की दी गई सौ वर्ष की आयु को भी पूर्ण नहीं भोग पाते और पच्चीस, तीस, पचास, सत्तर तक की आयु भी बड़ी कठिनाई

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सभी भारतीय संस्कृति के उपासकों का तथा सभी यज्ञ प्रेमियों का यज्ञ के लिए आवाहन

ले.-आचार्य महावीर सिंह अध्यक्ष दयानंद मठ चम्बा हि.प्र.

यज्ञ-ऋग्वेद में वर्णित दुर्लभ शारद यज्ञ।

यज्ञ के प्रवर्तक-हमारे पूज्य चरण स्वनाम धन्य स्व० पूज्य स्वामी सुमेधानंद जी महाराज।

वर्तमान संचालक-समस्त सहयोगियों के साथ आचार्य महावीर सिंह।

यज्ञभूमि-हमारे पूज्य चरणों की तपस्थली तथा उनकी कर्मभूमि, पवित्र रावी नदी के किनारे पर बना दयानंद मठ चम्बा।

यज्ञ का आयोजन-बड़े-बड़े दीर्घसत्रयी यज्ञों की साक्षी पूज्य चरणों के द्वारा निर्मित दयानंद मठ चम्बा की भव्य यज्ञशाला में

यज्ञ का ध्येय-यज्ञ से तृप्त, संतृप्त सम्यग रूप से पूजित देवों, पितरों का आशीर्वाद व कृपा दृष्टि को प्राप्त करना।

किस लिए-वैदिक विचारधारा का वैदिक मान्यताओं का सुदूर पर्वतीय उपत्यकाओं तथा गिरि गह्वरों तक फैले दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र में प्रचार व प्रसार करने की सफलता के लिए

अभिलाषा-द्युलोक, अंतरिक्ष लोक, पृथ्वी लोक इन सब लोकों में शान्ति का वास हो। जल, औषधियां, वनस्पतियां यहां तक कि जड़ चेतन रूप सभी देवजन शांति के दाता हो। शांति देने वाले हो। ज्ञान का प्रवाह भी शान्ति की ही बयार बहाने वाला हो। जो दिखाई दे रहे हैं, जो न भी दिखाई दे रहे हैं ऐसे संसार के समस्त पदार्थ शान्ति का ही संचार करने वाले हों। यहां तक कि स्वयं शान्ति भी हमेशा-हमेशा शान्ति को ही देने वाली हों। कभी अशान्ति का रूप न धरे। अंत में चारों ओर से बरसने वाली सबको आनंद विभोर करने वाली वह शान्ति हमें भी प्राप्त हो। जिस शांति के साथ हमारा अन्तिम सफर पूरा हो।

इसके लिए प्रयास-निर्माणशालाओं (शिक्षणालयों) को आरंभ करना। जिनमें भारतीय संस्कृति के संस्कारों के पुट से संपुटित कर गौरवशाली राष्ट्र की निर्माण सामग्री का, अर्थात् देश, जाति व समाज के लिए समर्पित उदात्त चरित्र वाले नवयुवक व नवयुवतियों का निर्माण करना तथा वैदिक विचारधारा से उन्हें तरासना तथा वैदिक मान्यताओं से उसे उन्हें सजाना लक्ष्य है। जिन पर भावी राष्ट्र का भव्य भवन खड़ा हो सके। व्यवस्थित समाज की सुन्दर वाटिका तैयार हो सके। जो अभिलषित शान्ति के संवर्षण में सहायक हो।

सहायता, सहयोग-समाज में किसी भी तरह से, अभावग्रस्त, साधनहीन, सहायता व सहयोग के पात्र ईश्वर पुत्रों का तदनुकूल रूप से सहायता व सहयोग करने का प्रयास करना। ताकि समाज में शान्ति का संचार हो।

यज्ञों, महायज्ञों का चक्र चलाना-प्राणी, अप्राणी रूप जगत् का सब प्रकार से रक्षा करने के लिए यज्ञों तथा महायज्ञों का चक्र हमारे गुरू जी ने अपनी इस कर्मभूमि पर प्रारंभ किया। जो अब भी निरंतर चल रहा है।

यज्ञो वै अवति-ताण्डय बाह्मण के अनुसार यज्ञ समस्त जगत की सब प्रकार से रक्षा करता है। यज्ञों से एक सुंदर वातावरण का निर्माण होता है। सुंदर माहौल बनता है। जिस कारण सब ओर से शान्ति बरसती है। बस उसी शान्ति के संवर्षण के लिए हमारे गुरूदेव ने यज्ञों, महायज्ञों की श्रृंखला को शुरू किया।

यज्ञो उ देवानामन्नम-यह यज्ञ ही हैं जो देवताओं का अन्न हैं। इस यज्ञ से ही देव तुष्ट व पुष्ट होते हैं। शतपथ ब्राह्मण के मन्तव्य के अनुसार यज्ञों से तृप्त विश्वेदेवा: शान्ति-सभी देवजन शान्ति की वर्षा करते हैं। विश्व में शान्ति वर्षाने वाले इन मूल मंत्रों को जानने के बाद हमारे पूज्य चरणों ने अपनी साधनास्थलि, अपनी कर्मभूमि पर यज्ञों का चक्र चलाया।

और जाते-जाते चमत्कारों से चमत्कृत कर देने वाली जिनकी जादुई छड़ी को हमें सौंप गए। इन्हें करते रहने के लिए हमें कह गए। विशेषकर दुर्लभ शारद यज्ञ को ऋग्वेद में वर्णित दिन-रात निरंतर किए जाने वाले दुर्लभ, जिसे कोई नहीं करता ऐसे शारद यज्ञ को करते रहने का आदेश देकर गए। क्योंकि यह यज्ञ राष्ट्र को गौरवशाली बनाने के लिए, राष्ट्र को शक्तिशाली व बलशाली बनाने के निमित्त से किया जाता है। राष्ट्र में, समाज में तेजस्विता बढ़े। राष्ट्र व समाज ऐश्वर्यशाली व वैभवशाली, हो इस भाव से यह यज्ञ किया जाता है। हमारे पूज्य चरणों के सामने हमेशा ही अपने सत्युग, त्रेता व द्वापर युग का गौरवमय भारतवर्ष का, आर्यावर्त का चित्र चलचित्र के समान घूमता रहता था। उसी युग की वापसी के लिए वे यत्नशील रहे। प्रयत्न करते रहे। अपने जीवन काल में इन्हें करते रहे। भरपूर रूप में करते रहे। उसी प्रयास का भाग हमें भी बनाकर गए।

समय-उस दुर्लभ शारद यज्ञ का समय समीप का रहा है। अक्तूबर मास में यह यज्ञ किया जाना है। 16 अक्तूबर 2020 की प्रात: से 17 अक्तूबर 2020 के सुबह 10 बजे तक यह यज्ञ आयोजित होगा जो दिन-रात निरंतर चलेगा।

परिस्थितियां-इस समय परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं। अर्थ का भारी संकट संस्था के सामने उपस्थित है। विद्यालय से प्राप्त फीसों में से विद्यालय के खर्चों को पूरा करने के बाद शेष राशि का प्रयोग हम इन यज्ञ कार्यों में कर देते थे। आजकल स्कूल बंद है। फीसें आ नहीं रहीं।

अत:-आप लोगों की ओर सहयोग की कामना से इस यज्ञ को पूर्ण कराने में अपनी भूमिका निभाने के लिए आवेदन व निवेदन करने के लिए उन्मुख हुआ हूं।

प्रिय बन्धुओं-हम सब के सम्मिलित प्रयास से जहां देवों का पूजन होगा। वहीं पितरों का भी तर्पण होगा। जिस अपरिमित फल के भागी हम सब बनेगें। इसलिए अवश्य ही सहयोग का लम्बा हाथ आगे बढ़ाना।

यज्ञो वै आश्रवणम्-उपदेश देना तथा मार्गदर्शन कराना भी यज्ञ है। शतपथ ब्राह्मण के इस वचन का पालन करते हुए जहां मैं इस महायज्ञ को करने के लिए आप लोगों को भी उद्बोधित करता हुआ तथा दिग्दर्शन कराता हुआ यज्ञ ही कर रहा हूं।

वहीं-देवरथो वा एषयज्ञ:-यह यज्ञ देवरथ है। देवों का रथ है। एतेरेय बाह्मण के इस वाक्य के अनुसार आप लोग भी इस यज्ञ में अपनी सहायता व सहयोग के द्वारा देव बन इस रथ पर सवार होकर देवलोकों को प्राप्त करने वाले बन जाऐंगें। देवोदानाद् दान देने वाले देव होते हैं। यह यास्काचार्य ने कहा है।

इसलिए-भूरिश: भूरि मे देहि-आप लोग ऐश्वर्यशाली हैं। ईश्वर तथा यह यज्ञ देव आप लोगों को और भी बहुत ऐश्वर्यशाली बनावें। और आप लोग हमें इन यज्ञ कार्यों के लिए बहुत रूप में धन दो तथा आगे भी देते रहो। हमें ही नहीं समाज में हर शुभ कार्यों के लिए अपनी पवित्र कमाई को उड़ेलते रहो। हमें इसलिए दो।

क्योंकि-इस समय हमें धन की नितान्त आवश्यकता है। संस्था के दैनिक कार्य भी धनाभाव से प्रभावित हो रहे हैं। और यह कष्टसाध्य, व्ययसाध्य दुर्लभ यज्ञ तो उपस्थित हो ही रहा है। जिसे हमने करना ही करना है। क्यों करना है, क्योंकि आज राष्ट्र को, समाज को यहां तक कि विश्व को इसकी नितांत आवश्यकता है। इस समय सारा का सारा विश्व त्रस्त है। उस त्रास को मिटाने का यही एकमात्र हल है। और दूसरा पूज्य चरणों को दिए वचन को भी तो निभाना है। आप लोगों के लिए भी यह सौभाग्य का अवसर है।

काले न्यायगतम पत्रे विधिवत प्रतिपादितम्।

ददाति परमम् सौख्यम् इहलोके परत्र च।।

समय पर उचित पात्र को न्याय से उपार्जित धन यदि सत्कारपूर्वक दिया जाए, तो वह इस लोक में भी और परलोक में भी महान सुख को देने वाला होता है। महर्षि व्यास के अनुसार-यह समय उचित स्थान पर श्रद्धा से, निष्ठा से अपनी पवित्र कमाई को समर्पित करने का समय है। इसलिए मेरे प्रियजनों इस यज्ञकर्म में अधिक से अधिक धन देने का प्रयास करना। पूज्य स्वामी जी के इस भगीरथ प्रयास को आगे बढ़ाने में आप सब हमारा भरपूर रूप से सहयोग करें। उपस्थित इस अवसर का भरपूर लाभ उठाएं। ईश्वर सबका कल्याण करे।

बैंक का नाम-स्टेट बैंक आफ इडिया

खाता नं. 11149833806

IFSC-SBIN0000626

मो. 86270-83780, 62300-53105

पृष्ठ 5 का शेष-हमारे शरीर के सब अंग सशक्त हों

से भोग पाते हैं और जब तक जीवित रहते भी हैं, उनके प्राय: प्रत्येक अंग में कुछ न कुछ दोष रहता है, ठीक से गति नहीं कर पाते और यह सब कष्ट उनकी अल्पायु में मृत्यु का कारण बनते हैं।

इस प्रकार इन सात मन्त्रों के द्वारा हम प्रतिदिन अग्निहोत्र आरम्भ करने से पूर्व इस तृतीय क्रिया के अंतर्गत परमपिता परमात्मा के निकट बैठकर, उसकी गोदी को प्राप्त कर उससे निवेदन कर रहे हैं कि हमारे इन सब अंगों में तब तक पुष्टि बनी रहे जब तक हम जीवित है किन्तु यह पुष्टि केवल प्रार्थना मात्र से नहीं हो सकती इसके लिए हमें बहुत सी सावधानियां भी करनी होती है, बहुत सी सिद्धियाँ भी प्राप्त करनी होती है, जिन्हें पाने के लिए हमें निरंतर पुरुषार्थ करना होता है। पुरुषार्थ करेंगे तो निश्चय ही हम इन्हें पाने में सफल होंगे और लम्बी आयु जीने के अधिकारी होंगे।

पृष्ठ 2 का शेष-कोरोना काल में ''स्वाध्याय'' का महत्त्व

गुरु पितु मातु नवावहि माथा
वेद पुराण पठहि मन लाई
आपु समुझहि अनुजहि समुझाई

वे केवल स्वाध्याय नहीं करते थे अपितु वेदों को मन लगाकर पढ़ते भी थे उनके रहस्यों को समझते भी थे। इतना ही नहीं वह उस ज्ञान को अपने छोटे भाईयो को भी प्रदान करते थे। इसका अभिप्राय यह है कि हमें स्वाध्याय को नित्य प्रति नित्य क्रियाओं में सम्मिलित कर इसका लाभ-उठाना चाहिए। इतना ही नहीं इस ज्ञान को दूसरों में भी बांटना चाहिए।

स्वाध्याय हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। हमें अपने साथ-साथ अपने बच्चों को भी इसकी आदत डालनी चाहिए। घर में अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद कर लानी चाहिए। बच्चों के जन्मदिन पर उन्हें अच्छी पुस्तकें भेंट करनी चाहिए। दूसरे लोगों को भी खुशी के अवसर पर पुस्तकों को ही उपहार स्वरूप भेंट करना चाहिए। इसी से स्वाध्याय की आदत बनेगी और बढ़ेगी।

वैज्ञानिक प्रगति के इस दौर में हम अन्तर्जाल, मोबाइल और टी.वी. से चिपके रहते हैं। उनसे निकलने वाली किरणों से हमारे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पुस्तकें व धार्मिक ग्रन्थ हमारे आजीवन साथी होते हैं। हमें इनका सम्मान करना चाहिए। खेद का विषय है कि अब हमें पुस्तकें खरीदने का शौक नहीं रहता। बल्कि अपने बुजुर्गों की शौक से खरीदी हुई मूल्यवान् पुस्तकों व धार्मिक ग्रन्थों को हम उनकी मृत्यु के पश्चात हरिद्वार या किसी आश्रम के पुस्तकालय में दान के रूप में दे देते है।

आज हम संकट के दौर से गुजर रहे है। कोरोना जैसी बीमारी ने हमारे नाक में दम कर रखा है। हम टी.वी. मोबाइल के, सहारे समय काट रहे हैं खालीपन से हम उक्ता चुके है। अपनों से दूर हो चुके है। जीवन में नीरसता छा गई है। निराशा और अवसाद के कारण नकारात्मक सोच ने हमें जकड़ लिया है। हम भय के दौर में जी रहे है अपनों से भी डर लगता है। खाने पीने में भी रूचि नहीं रही है। मन उदास और हताश रहने लगा है। कोरोना के बढ़ते हुए आंकड़े सुरसा राक्षसी के मुँह की तरह बढ़ते ही जा रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। महंगाई भी अनियन्त्रित होती जा रही है। ऐसे में हम करें तो क्या करें। हमें अपने जीवन मूल्यों को फिर से तलाशना है। सादा जीवन उच्च विचार की नीति और जीवनशैली को अपनाना है। सादा रहन सादा खान पान और अच्छे ग्रन्थों से महापुरुषों के उपदेश और विचार धारण करके ही हम अपनी नकारात्मक सोच को सकारात्मक बना सकते है। निराश और हताश जीवन को आशावान् बना सकते हैं। एकाग्रता से स्वाध्याय कर और सद्वचनों का चिन्तन करके ही हम इस कोरोना काल में समय का सदुपयोग कर सकते है। स्वाध्याय के द्वारा ही हम अपने को जान सकते हैं अपने दुर्गुणों को दूर कर सद्गुण ग्रहण कर सकते हैं। यह केवल कोरोना काल में समय का सदुपयोग करते हुए स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव है। स्वाध्याय द्वारा ही हमें सत्य का ज्ञान और आत्मज्ञान हो सकता है। हमें बच्चों को बचपन में ही स्वाध्याय की आदत डालनी चाहिए ताकि वे सद्ग्रन्थों से जीवन की कठिनाईयों का सामना धैर्यपूर्वक कर सके।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/-रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/-रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें।आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

पृष्ठ 4 का शेष-''हम अन्दर बाहर से एक बनें''

व्यवहार में लाना बहुत ही विशाल कार्य है। धर्म का आचरण करना अर्थात् जीवन के प्रत्येक छोटे बड़े क्षेत्र में धर्म का पालन करना। यह कहने में जितना सरल हैं, करने में उतना ही कठिन है। ऐसे-ऐसे कुल मिला कर सोलह उपदेश हैं जिन्हें आचार्य शिष्य की विदाई पर स्मरण करवाता है और उनमें सबसे प्रथम है सत्यं वद सत्य बोलना। यही आगे आने वाले सारे उपदेशों का, आदेशों का मूल है। यदि सत्य को ही त्याग दिया तो फिर अन्य उपदेश तो मानों व्यर्थ ही हो जाते हैं। जब हम वेद की बात करते हैं, वेद मन्त्रों में निहित अर्थों की बात करते हैं तो उसका अभिप्राय यही होता है कि वे आर्य हमारे जीवन का अंग बनें और उनकी छाया हमारे कर्मों में दृष्टिगोचर होनी चाहिये।

सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि जो उपदेशक लोग है, प्रचारक और वय-प्रदर्शक लोग हैं उनका जीवन अत्यन्त पावन, शुद्ध और सरल होना चाहिये तभी उनके उपदेश का भी प्रभाव पड़ेगा। उनके मन को भी सन्तुष्टि उसी समय मिल सकेगी कि हां, मैंने उसी बात का उपदेश लोगों को दिया है जो मेरे अपने व्यवहार में है। सत्य से व्यक्ति के अन्दर अद्भुत आत्मिक बल का उदय होता है, वाणी में ओज आ जाता है। सत्य के सान पर साधी गई वाणी का श्रोताओं पर विद्युत सम प्रभाव पड़ता है। पुरानी पीढ़ी के आर्य समाजियों की इसी विशेषता के कारण अन्य लोग आकर्षित होते थे। युवा चाहे कोई भी क्यों न हो, परिस्थिति चाहे कैसी भी क्यों न हों, हमें अपनी मर्यादा और धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिये। स्मरण रखिये कि जैसे दुष्ट व्यवहार, छल कपट आदि दुःख के रूप में फलित होते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ व्यवहार भी सुख के रूप में फल देने वाला होता है। कृत्रिम जीवन कभी भी चिरस्थायी सुख रूप फलोत्पादक नहीं होता। थोड़ी देर के लिये यह बनावटी जीवन किसी को छलावे में तो रख सकता है, परन्तु सत्य के प्रकट होते ही विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। ईश्वर को भी सच्चे और शुद्ध व्यवहार वाले लोग ही अच्छे लगते हैं। उसके सामने तो बनावट चल ही नहीं सकती। परन्तु कितने आश्चर्य ही बात है कि वहां भी लोग नाटक करते हैं। वे ईश्वर को भी अपने जैसा अज्ञानी और चाटुकारिता करवाने वाला समझने की भूल कर बैठते हैं। मन वचन और कर्म में जब तक एकता स्थापित न होगी तब तक कल्याण मार्ग अति दूर ही रहेगा। कई बार देखा गया है कि बहुत बड़े-बड़े उपदेश देने वाले लोग भी व्यवहार काल में छोटी-छोटी भूलें कर बैठते हैं जिनका लोगों के ऊपर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रवचन काल में जितना तन्मय होकर हम व्याख्यान करते हैं, व्यवहार काल में भी वैसा ही सावधान रहना चाहिये।

संसार में यदि सबसे सरल कार्य कोई है तो वह अन्यों को उपदेश देना है और सबसे कठिन कार्य कोई है तो वह स्वयं उस बात पर आचरण करना है। हमारे साथ रहने वालों को हमारा उपदेश नहीं आचरण प्रभावित करता है। यह अन्दर बाहर की शुद्धि और एकता जिस समय सिद्ध हो जाती है, स्थापित हो जाती है तो मनुष्य स्वयमेव ही उन्नति के मार्ग पर चल पड़ता है। वेद के एक-एक शब्द में महान् विज्ञान भरा पड़ा है। यदि हम एक भी शब्द के मार्ग को जान सकें तो, वहीं वांछित फल की प्राप्ति करवाने में सहायक हो सकता है। महाभाष्यकार ऋषि कहते हैं-एकः शब्द सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति, अर्थात् यदि वेद के एक भी शब्द को भली भांति समझ लिया जाये और समझ कर उसके अनुसार आचरण कर लिया जाये तो वह हमारे इस संसार को स्वर्ग बनाने की शक्ति रखता है। और वही हमारे लिये कामधेनु बन जाता है। ईश्वर और उसके न्याय की अपेक्षा हमें अपनी चतुराई, छल, कपट, धोखे आदि पर अधिक विश्वास है। क्यों? क्योंकि हमने कई इन्हीं के बल पर अपने कार्य सिद्ध किये हैं। अतः हमें इनका अभ्यास हो गया है।

जिसने एक बार चोरी करके छल, कपट आदि से अपने आप को बचा लिया, जब वह दूसरी बार चोरी करेगा तो अधिक विश्वास और चतुराई से करेगा। धीरे-धीरे यह अभ्यास दृढ़ होता जायेगा। यहां तक कि पकड़े जाने पर उसे दण्ड भी मिलता है, कारागार में भी डाला जाता है लेकिन वहां से भी छूटने पर पुनः चोरी करता है। इसलिये कि पहले यह संस्कार था अब उसकी प्रकृति बन गई। ऐसे व्यक्ति का सुधरना कठिन हो जाता है। जिस समय पहली बार चोरी का विचार मन में उत्पन्न हुआ था उसी समय यदि उसे दोष समझ कर त्याग दिया जाता तो आगे पड़ने वाले संस्कारों से बचा जा सकता था। दोहरा व्यक्तित्व किसी भी मनुष्य का कल्याण करने वाला नहीं हुआ करता है। अपना जीवन शुद्ध रखिये, पवित्र रखिये, पारदर्शी रखिये। अन्यों के सुख दुःख, हानि लाभ को अपने सुख दुःख, हानि लाभ समझने का अभ्यास कीजिये। यद्यपि आरम्भ में यह कठिन जान पड़ेगा परन्तु धीरे-धीरे इसी में आनन्द अनुभव होने लगेगा।

वेदों में ऋषि

वेद के प्रत्येक मंत्र के पूर्व में ऋषि, देवता, छन्द और स्वर का उल्लेख होता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि मंत्र के पूर्व में ऋषि का उल्लेख किस कारण से हुआ है? क्या मंत्र का रचयिता ऋषि है? जैसे लेखक गण अपने लेख के साथ अपना नाम लगा देते हैं क्या वैसे ही ऋषि लोग जो मंत्र के सृष्टा हैं मंत्र के साथ अपना नाम जोड़ देते हैं? इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती का कहना है कि ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मंत्रों के अर्थों का विचार करने लगे फिर उनमें से जिस जिस मंत्र का अर्थ जिस जिस ऋषि ने प्रकाशित किया उस उसका नाम ऋषि नाम भी हुआ है। और जो उन्होंने ईश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े-बड़े प्रयत्न के साथ वेद मंत्रों के अर्थों को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिए पूर्ण उपकार किया है, इसलिए विद्वान् लोग वेद मंत्रों के साथ उनके नाम का स्मरण करते हैं। जो मनुष्य अर्थ को समझे बिना अध्ययन वा श्रवण करते हैं उनका सब परिश्रम निष्फल होता है। अर्थ को ठीक-ठीक जान कर उसी के अनुसार व्यवहारों में प्रवृत्त होना वाणी का फल है। और जो लोग इस नियम पर चलते हैं वे साक्षात् धर्मात्मा अर्थात् ऋषि कहलाते हैं। इसलिए जिन्होंने अपने उपदेश से अल्प बुद्धि मनुष्य को वेद मंत्रों के अर्थों का प्रकाश कर दिया है। यह सब ऋषियों ने इसलिए किया कि जिससे वेदार्थ प्रचार की परम्परा स्थिर रहे। तथा जो लोग वेद शास्त्रादि पढ़ने को कम समर्थ हैं वे सुगमता से वेदार्थ को जान सकें। इसलिए निघण्टु और निरूक्त आदि ग्रन्थ भी बना दिए हैं कि जिनके सहाय से सब मनुष्य वेद और वेदाङ्गों को पढ़कर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश करें।

निरूक्त 1,20 में कहा गया है, साक्षात् कृत धर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽ वरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्राहुः। जिन्होंने सब विद्याओं को यथावत् जाना था, वे ही ऋषि हुए थे, जिन्होंने उपदेश से प्रचार अर्थात् अल्प बुद्धि मनुष्यों को वेद मंत्रों के अर्थों का प्रकाश कर दिया है।

न ह्योषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषरेत तपसो वा। निरूक्त 13.12

जो ऋषि और तपस्वी नहीं है उसे वेदार्थ का प्रत्यक्ष नहीं होता।

ते यत् पुरास्मान् सर्वस्मात् इदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्माद् ऋषयः। शतपथ ब्राह्मण 6.1.1.1

जिन तपस्वी जीवों को तप व परिश्रम से ध्यान करते हुए वेदार्थ का ज्ञान प्राप्त हुआ, वे उन, उन मंत्रों के ऋषि कहलाए।

ऋषियो मन्त्रद्रष्टारः ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौषमन्यवः।

तद् यदेनास्तपस्यमानात् ब्रह्म स्वयंम्भवभ्यानर्षत् तदृषीणाम् ऋषित्वमिति। निरूक्त 2.1

ऋषि वेद मंत्रों के दृष्टा होते हैं। औपमन्यव आचार्य ने भी कहा है कि वेदों में प्रयुक्त स्तोम स्तुति इत्यादि विषय मंत्रों के वास्तविक अर्थ का साक्षात्कार करने वाले को ही ऋषि के नाम से पुकारा जाता है। तपस्या करते हुए जो इनको स्वयम्भूः नित्य वेद के अर्थ का भान हुआ, इसलिए वे ऋषि कहलाए। यही वेद मंत्रों का रहस्य रूहित अर्थ दर्शन ही ऋषित्व है।

महर्षि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा हैं, ऋषयों मंत्रदृष्टयः मन्त्रान्सम्प्राहुः। जिस जिस सत्यार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिए अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मंत्र कर्ता बतावे उसको मिथ्यावादी समझें। वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द के लेख तथा प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों से स्पष्ट है कि मंत्रों के प्रारम्भ में लिखे ऋषि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। वे मंत्रों के रचयिता नहीं है।

यह मानना कि जिन ऋषियों के नाम मंत्र के साथ लिखे हैं वही उन मंत्रों के रचयिता हैं इसलिए भी ठीक नहीं है कि वेदों का अध्ययन ब्रह्मादि ने भी किया था और उस समय इन कथित ऋषियों का तो जन्म भी नहीं हुआ था फिर भी वेद तो थे और उनका अध्ययन अध्यापन भी होता ही था। इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय भी ब्रह्मादि के समीप वेदों का वर्तमान था।

ऋषियों को मंत्र रचयिता मानने पर अनेक भ्रान्तियों की उत्पत्ति भी होती है। अनेक ऐसे मंत्र हैं जिनके अनेक ऋषि हैं जैसे-

अग्न आयुंषि पवस्व आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।।

यह मंत्र सामवेद में मंत्र संख्या 627,1464 तथा 1518 में आया है। इसके 1 शतं वैखानस ऋषयः सौ ऋषि लिखें हैं। क्या इस छोटे से मंत्र को 100 ऋषियों में मिल कर रचा है।

ऋग्वेद मण्डल 9 सूक्त 107 वें सूक्त के सात ऋषि बताए हैं। क्या इस छोटे से सूक्त को 7 ऋषियों ने मिल कर रचा है।

वेदों में अनेक मंत्र ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों में पठित हैं एक ही वेद में एक मंत्र अनेक बार पठित है और उनके ऋषि भिन्न-भिन्न हैं। जैसे चित्रं देवानामुदगा मंत्र ऋग्वेद 1.115.1 में कुत्स अङ्गिरस और यजुर्वेद 13.46 में 'साध्या' और 'प्रजापति' ऋषि हैं।

साथ ही अथर्ववेद 13.2.35 में इसका ऋषि 'ब्रह्मा' है।

इडा सरस्वती मही० इस मंत्र का ऋग्वेद 1.13.9 में ऋषि मेधातिथि है और ऋग्वेद 5.5.8 में इसका ऋषि वसुश्रुत आत्रेय है। इससे स्पष्ट है कि ऋषियों को मंत्र कर्ता मानने पर अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है और 'द्रष्टा' मान लेने पर कोई आपत्ति नहीं रहती। मंत्र कर्ता मान लेने पर ऋषियों पर साहित्य चोरी का आक्षेप लगेगा। मंत्र के ऋषि के नाम से मंत्र के अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

शिव नारायण उपाध्याय 73, शास्त्री नगर दादाबाड़ी कोटा (राजस्थान)

वेदवाणी

दुष्कर्मी सन्मार्ग को नहीं तर सकते

पत्रान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः।।

-ऋ० ९।७३।६

ऋषिः-**पवित्र आङ्गिरसः।।** देवता-**पवमान सोमः।।** छन्दः-**जगती।।**

विनय-देखो, स्वर्गिक गान के स्वर सुनाई दे रहे हैं, दिव्य प्रकाश की किरणें दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये और कुछ नहीं हैं, सत्यनियम (ऋत) ही मिलकर ठीक धुन में ताल-स्वर के साथ बज रहे हैं। सत्यनियम ही हमारे अनुकूल रूप धारण करके दीख रहे हैं। ये दिव्य शब्द व प्रकाश की किरणें ऊपर से आ रही हैं, द्युलोक से आ रही हैं। वहीं हम सबका पुराना सनातन उत्पत्तिस्थान है, निर्माणस्थान है। वहीं से इस अनादि ब्रह्माण्ड-वीणा के सब स्वर निकल रहे हैं, सदा से निकलते रहे हैं और सदा निकलते रहेंगे। ये जिस वीणायन्त्र से निकल रहे हैं वह प्रभुवाणी की वीणा है, उसकी श्लोक, ईक्षणशक्तिरूपी वीणा है, इसीलिए उसकी ये रश्मियाँ इस सब वेगवान् महान् संसार को जानती हुई चल रही हैं, अपने प्रभु के सर्वगत चैतन्य के स्पर्श से कभी वियुक्त नहीं होतीं। इन किरणों और इन स्वरों के अनुसार जो लोग अपने-आपको चलाते हैं, इनकी ताल-पर-ताल देते हुए इनके अनुसार अपने शरीर-मन-बुद्धि को हिलाते-नचाते और ठीक करते जाते हैं, वे तो बड़ी आसानी से ऊपर-ऊपर चढ़ते जाते हैं, पर दुःख है कि यह अन्धा और बहरा संसार न उन्हें देख रहा है और न सुन रहा है। हम लोग बड़ी बेपरवाही के साथ सब-कुछ अनसुना करते हुए अंधाधुन्ध अपनी हाँकते जा रहे हैं, तभी दुःख पा रहे हैं और जहाँ-के-तहाँ पड़े हुए हैं; उन्नति-पथ पर आगे नहीं बढ़ सकते। सचमुच अपने इन दुःखदायी प्रतिकूल कर्मों को, दुष्कर्मों को हम इसीलिए करते हैं-करने में प्रवृत्त होते हैं-चूँकि हम इन स्वर्गिक लहरों को सुन व देख नहीं रहे हैं, अतः आओ, भाइयो! हम अब अपने उन कानों और आँखों को खोल लेवें जिनसे कि प्रभुधाम से अनवरत आने वाले ये दिव्य स्वर सुनाई और दिखाई देते हैं। ऐसे कान और आँख तो हम सबके पास हैं।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड, जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org